ISSN No. 2349-4654
नाद - नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक वर्ष : 1, अंक : 2, दिसम्बर 2014

भारतीय संगीत में निहित शोध समस्याएँ

डॉ. वन्दना शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार-संक्षेप

प्रत्येक विषय की प्रगति उसके अनुसंधान में नीहित रहती है। भारतीय संगीत में अनुसंधान सदियों से चला आ रहा है। भरत के जिज्ञासु जन ने ही नाट्यशास्त्र की संरचना को जन्म दिया। उनके द्वारा प्रस्तुत अवधारणाएँ भारतीय संगीत का आधार है। कालान्तर में अन्य विषयों से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ सामने आने लगीं। शोधार्थी वर्ग उनका समाधान खोजने लगे। उनमें से कई सफल हुए जिससे संगीत समाज को लाभ हुआ। लेकिन यह भी सत्य है कि शोधार्थी को शोध करते समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का क्षेत्र कोई भी हो सकता है। वे शास्त्र, क्रियात्मक एवं संस्थागत शिक्षण से सम्बन्धित हो सकती हैं अथवा अन्य शोधार्थी के लिए इनसे सम्बन्धित समस्याएँ मुँह बाएँ खड़ी रहती हैं। शोधार्थी समाधान चाहता है लेकिन तथ्यों के अभाव में या शोध प्रविधि के अभाव में उन समस्याओं का हल नहीं कर पाता। यदि शोधार्थी का विषय से सम्बन्धित समस्याओं पूर्वानुमान हो जाए तो निश्चित ही शोध समस्याओं से वह उबर पाएगा। उपरोक्त वर्णित समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-पत्र में संगीत विषय के अन्तर्गत उसके शास्त्र पक्ष की समस्याओं को आधार बनाया है जिससे उन समस्याओं का हल खोजा जा सके।

शोध-पत्र

भारतीय संगीत में अनुसंधान का आयाम अनन्त हैं। संगीत का अन्य विषयों यथा काव्य, साहित्य, इतिहास, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान एवं ललित कलाओं तथा ज्ञान की विविध शाखाओं से सहसम्बन्ध होने के कारण शोधार्थी के अध्ययन का क्षेत्र-फलक भी विस्तीर्ण हो जाता है। संगीत के अन्तर्गत कंठ संगीत, वाद्य संगी, संगीत के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों का समावेश होने से अनुसंधाता का दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है अतएव शोध-कार्य में प्रवृत्त होने पर शोधार्थी को विवेच्य विषय संबंधी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

संगीत का शास्त्र एवं क्रियात्मक भंडार अपरिमित है। किसी भी पक्ष से सम्बद्ध किसी विषय का चयन करने पर शोधकर्ता के समक्ष कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। अनुसंधान के क्षेत्रों के आधार पर इन समस्याओं को स्थूल रूप से शास्त्र पक्ष, क्रियात्मक पक्ष, शिक्षण पक्ष से सम्बद्ध सम्याओं में बाँटा जा सकता है। परन्तु यहाँ केवल शास्त्र पक्ष सम्बन्धी समस्याओं पर ही विचार किया गया है।

भारतीय संगीत के शास्त्र पक्ष से सम्बद्ध समस्याएँ

1. भाषा सम्बन्धी समस्या :

संगीत का शास्त्र कोष अत्यन्त्र व्यापक है। सैद्धान्तिक पक्ष पर अनुसंधान करने वाले शोधार्थी के लिए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन एवं उनमें प्राप्त सूचनाओं का उद्घाटन करना अनिवार्य हो जाता है। शास्त्र के साथ विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ भी जुड़ी होती हैं। ऐसी अवस्था में साहित्य की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का अवलोकन करना अनुसंधाता का दायित्व बन जाता है। अत: शोधार्थी को इतिहास भाषा, साहित्य आदि विषयों का यथेष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। इसके स्पष्टीकरण के लिए यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा। यदि किसी शोधार्थी का अनुसंधेय विषय 'प्रबंध' है, तो ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम तो भाषा की ही समस्या उठेगी। प्रबंध से संबंधित अध्ययन सामग्री प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध होती है। ऐसी स्थिति में विषय के तथ्य तक पहुँचने के लिए उसे संस्कृत भाषा का पर्याप्त ज्ञान होना अनिवार्य हो जाता है। किन्हीं दो समसामयिक ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दे सकता है। उदाहरणस्वरूप शार्ङ्गदेवकृत संगीत रत्नाकर (13वीं शताब्दी) एवं पार्श्वदेवकृत संगीत समय सार (13वीं शताब्दी) में दोनों ग्रंथ समकालिक माने जाते हैं, किंतु प्रबंध के अंगों के सम्बन्ध में ग्रन्थकारों में मतैक्य नहीं है। शार्ङ्गदेव के निर्देशानुसार प्रबंधों की जातियाँ उनके अंगों के आधार पर निर्धारित की गई हैं—

मेनिन्यथानन्दिनी स्याद्दीपनी भावनी तथा ॥19॥[1]
तारावलीति प च स्युः प्रबन्धानां तु जातयः।

पार्श्वदेव का मत इस विषय में भिन्न है—

तारावल्यादयः संज्ञा जातीनां कैश्चिदीरिताः॥2॥
अंगसंख्याावियोगात्तु नैवैताः सम्मता मम।[2]

इसी प्रकार संगीत रत्नाकर में प्रबंध के दो भेद निर्युक्त व अनिर्युक्त निर्दिष्ट किए गए हैं। पाश्वर्दव ने अपने ग्रंथ में 'उभयात्मक' प्रकार का भी निर्देश किया है। स्पष्ट है, कि यदि अनुसंधानकर्ता ने इन दोनों ग्रन्थों का समुचित अध्ययन नहीं किया है, तो वह सत्य का उद्घाटन नहीं कर

पाएगा। अतएव भाषा का यथेष्ट ज्ञान होना अनुसंधानकर्ता के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शोधार्थी को फारसी, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश एवं डिंगल भाषाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

संगीत के शास्त्र पक्ष से संबंधित विषय का चयन करने पर शोधार्थी के समक्ष भाषा की समस्या तो रहती ही है, इसके अतिरिक्त कई बार किसी गान शैली अथवा वाद्य की उत्पत्ति एवं आविष्कार से सम्बन्धित विषय का चयन करने पर उसके आविष्कारक के सम्बन्ध में विवाद होने के कारण भी शोधार्थी को सत्य को अंकित करने में कठिनाइयाँ आती हैं। उदाहरणार्थ : अब से कुछ समय पूर्व तक सितार के आविष्कारक का श्रेय हज़रत अमीर खुसरो (1255-1325) को दिया जाता था, संगीत जगत् में काफी समय तक यह भ्रामक धारणा बनी रही। हाल ही में हुए फारसी ग्रंथों के अध्ययन से अब यह स्पष्ट हुआ है कि सितार के आविष्कारक अमीर खुसरो नहीं थे।

इसी प्रकार ध्रुपद के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों का मत है कि सालगसूड प्रबंधों के अन्तर्गत ध्रुव प्रबंध से इसका सम्बन्ध है। हाल ही में हुए शोधों के आधार पर इसका सम्बन्ध एक ताली प्रबंध से जोड़ा गया है।

इसी प्रकार ख्याल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आधुनिक काल में विद्वान एकमत नहीं हैं। अनेक मतों में कुछ मत अमीर खुसरो का ख्याल का आविष्कार मानते हैं, कुछ ध्रुपद से ख्याल शैली का जन्म मानते हैं, कुछ ध्रुपद व कव्वाली दोनों को ही 'ख्याल' शैली का जन्मदाता मानते हैं, कुछ मत के अनुसार 'ख्याल' कल्पना मात्र है जिस प्रकार कल्पना विकसित हुई उसी तरह ख्याल, अर्थात ख्याल को कल्पना से उत्पन्न माना है, कुछ मतों के अनुसार ख्याल को प्रेम-प्रसंगों आदि से जोड़ा गया है, व कुछ का मत है कि यह महिलाओं की गान शैली है, अर्थात ख्याल की उत्पत्ति व आविष्कार के लिए अनेक मत हैं, तो सत्य क्या है, या ख्याल का आविष्कारक कौन है इतने मतों या इसके अतिरिक्त भी अनेक मतों द्वारा शोधार्थी कठिनाइयों व समस्याओं में घिर जाता है, ऐसे में सत्य को सही रूप से उजागर करना शोधार्थी के लिए कठिन हो जाता है, डॉ. मधुबाला सक्सेना के अनुसार—'ख्याल शैली के आविष्कार की तिथि निश्चित करना और आविष्कर्ता के नाम पर किसी एक व्यक्ति को नियुक्त करना सर्वथा अनुचित है।[3]

आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे विवादास्पद विषयों पर विभिन्न संगीत गोष्ठियों एवं सम्मेलनों में चर्चा कराई जाए ताकि सभी संगीत विचारक एक मत होकर इस दिशा में कुछ निष्कर्ष दें सकें, ऐसी स्थिति में शोधकर्ता का भी कार्य काफी सीमा तक सरल हो जाएगा।

भारतीय संगीत पर ग्रंथ लिखने वाले लेखक एच.ए. पोपले जब भारत में अनुसंधान कार्य कर रहे थे तो उन्हें बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—'भारत की विभिन्न परंपराओं में विविधता जरूर मिलती है, लेकिन एक खोज करने वाला व्यक्ति जब भारतीय संगीत के मूल स्वरूप का पता लगाना चाहता है तो बड़ी अड़चनें सामने आती हैं, क्योंकि यहाँ एक घराने का व्यक्ति दूसरे घराने को नीचा दिखाने की चेष्टा में रहता है। अत: सत्य तक पहुँचना बड़ा कठिन है...क्योंकि थोड़ी-थोड़ी दूरी पर भारतीयों की भाषा, धर्म, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, गान बजाना और व्यवहार सब बदल जाते हैं।[4]

2. ग्रंथों के काल निर्धारण

संगीत के शास्त्र पक्ष से ही सम्बद्ध शोध की एक अन्य समस्या विभिन्न ऐतिहासिक संगीत ग्रंथों के काल निर्धारण की है। यदि किसी ग्रंथकार ने अपने ग्रंथ में अपने आश्रयदाता अथवा किसी समकालीन शासक का नामोल्लेख किया है, तब तो यह समस्या कुछ अंशों तक सुझल जाती है। उदाहरणस्वरूप महाराणा कुम्भा सोमेश्वर आदि के विधिक्रम को निर्धारित करने में कोई समस्या नहीं होती क्योंकि ये दोनों ही ग्रंथकार संगीत शास्त्री होने के साथ-साथ महान् शासक भी हुए हैं। कुछ ग्रंथ हैं जिनमें रचनाकाल का समय अथवा आश्रयदाता के नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। किन्तु कुछ ग्रंथ जिनके तिथि निर्धारण के सम्बन्ध में संगीत विचारकों में मतभेद है, शोधकर्त्ताओं को उलझन में डाल देते हैं। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। अब से कुछ समय पूर्व तक लोचन की 'राग तरंगिणी' को लेकर संगीत शास्त्रियों में विवाद था। कुछ लोग इस ग्रंथ को 11वीं शताब्दी, कुछ 14वीं शताब्दी तो कुछ 17वीं शताब्दी की कृति मानते थे। जिन विद्वानों ने इसे 11वीं शताब्दी की रचना माना है वे इस ग्रंथ का काल निर्धारण

भुजवसुदशमितशाके...[5]

इस श्लोक के आधार पर मानते हैं। यदि लोचन को 12वीं शताब्दी का मानते हैं तो ऐसी स्थिति में, जबकि 'रागतरंगिणी' में विद्यापति के भी पद प्राप्त होते हैं, तो लोचन को वल्लाल सेन का समकालीन कैसे माना जा सकता है ?

लोचन की स्थिति काल के विषय में भातखंडे का यह वक्तव्य प्रस्तुत करना चाहेंगे—

"Here the experession भुजवसुदशमितशाके gives us the Shaka year 1082 corresponding to A.D. 1162. There seems to be however, some discrepancy in the enumeration of the astronomical details. Lochan-kavi refers in the work to two famous previous writers, namely, Jayadeva and Vidyapati."[6]

विद्यापति का समय 14वीं शताब्दी माना गया है। पं. सी.एस. पंत ने अपने अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर इस ग्रंथ का रचना काल 1670-1705 ई. निर्धारित किया है। अपने अध्ययन के आधार पर यद्यपि उन्होंने इस ग्रंथ के तिथि निर्धारण संबंधी समस्या को काफी अंशों तक सुलझाा दिया है, किन्तु खेद की स्थिति है कि अभी भी लोचन की तिथि को लेकर संगीत विद्वानों में विवाद बना है।

इसी प्रकार नारद के 'संगीत मकरंद' की तिथि का भी अध्ययन निर्धारण नहीं हो पाया है। इस ग्रंथ में संगीत शास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों के सम्बन्ध में अमूल्य सूचनाएँ मिलती हैं। राग व्यवस्था भारतीय संगीत

का प्रधान वैशिष्ट्य है। राग के प्रस्तुतीकरण के यों तो विभिन्न नियम हैं। उनमें से एक प्रधान नियम रागों के संगीत में शोध से सम्बद्ध है। प्रत्येक राग को विशिष्ट समय एवं ऋतु में गाने बजाने का निर्देश प्राचीन काल से ही हमारे संगीत ग्रंथों में होता चला आया है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गाए बजाए जाने के सम्बन्ध में समय एवं ऋतु सिद्धान्त प्राचीन काल से ही चलकर आ रहा है। रागों के समय निर्धारण का सिद्धान्त किस सीमा तक तार्किक एवं प्रामाणिक माना जाय, इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्षीय रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि हमारे प्राचीन संगीत मनीषियों ने अपने ग्रंथों में विभिन्न रागों को निर्धारित समय एवं ऋतु में गाने का निर्देश किया है। अतः इस दिशा में 'संगीत मकरंद' ग्रंथ का उल्लेख करना अति आवश्यक है। क्योंकि इस ग्रंथ में रागों के समय सिद्धान्त का अत्यधिक विस्तार से प्रतिपादन किया गया है।

नारद के संगीत मकरंद में रागों के समय सिद्धान्त के सम्बन्ध में अत्यन्त उपयोगी जानकारी मिलती है! राग अध्याय के अन्तर्गत नारद स्वयं ब्रह्मा से रागों के गान समय के विषय में प्रश्न करते हैं—

कति रागाः प्रगातव्याः प्रभाते सप्तसुस्वराः।
तथैव कति रागाश्च केनात्र प्रतिपादिताः॥ 6॥[7]

इसके प्रत्युत्तर में ब्रह्मा करते हैं—

तत्सर्वे संप्रवक्ष्यामि रागवेलाविनिर्णयम्॥ 8॥
यत्सुरैस्तन्न विज्ञातं नरकिन्नर नायकैः।
देशीरागरहस्य च साम्प्रतं शृणु यत्रतः ॥ 9॥[8]

उपर्युक्त कथन में 'देशी राग' संज्ञा का उल्लेख हुआ जो इस ग्रंथ में वर्णित रागों के स्वरूप की ओर इंगित करता है। नारद कृत 'संगीत मकरंद' में रागों को सर्वप्रथम दो वर्गों में रखा गया है—

1. सूर्यांश राग
2. चंद्रांश राग

सूर्यांश राग से तात्पर्य दिन में गेय रागों से तथा चंद्रांश राग से तात्पर्य रात्रि गेय रागों से है। रागों के गान समय को विभिन्न प्रहरों अथवा यामों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। नारद ने स्पष्ट रूप से कहा है—

एवं काल विधि ज्ञात्वा गायेद्यः स सुखी भवेत् [9]

नारद के अनुसार जो व्यक्ति राग को अपने निश्चित समय पर नहीं गाते तथा जो राग को निर्धारित समय पर नहीं सुनते वे केवल राग के सौन्दर्य को ही नहीं अपितु अपने आयुष्य को भी नष्ट करते हैं—

राग वेला प्रगानेन रागाणां हिंसको भवेत्
यः शृणेति स दारिद्री आयुनेष्यति सर्वदा।
देवता विषये गीत पुण्यनामप्रर्धनन्
आध्यात्मिकैप योगेन सर्वपाप प्रणाशनम्
विवाह समये दान देवता स्तुति संयुते
अबल रागमाकण्यं न दोषो भैरवी विना [10]

समय सिद्धान्त के अतिरिक्त रागों के पारिवारिक वर्गीकरण का सूत्रपात भी नारद के इस ग्रंथ से ही माना जा सकता है।

'संगीत मकरंद' में शुद्ध संकीर्णीद भेद से रागों के विभाग इस प्रकार कहे गए हैं—

'यथा धुपक्रमेणैव रागः शुद्ध उदाहृतः।
उपक्रम्य तथा रागो मे लन सममिश्रकम्॥ 52॥
पुनस्तन्मार्गगमकं रागारङ्ग प्रकीर्तितः।
सक्कीर्णरागमिश्राणां रागः सङ्कीर्ण उच्यते॥53॥[11]

नारद ने संगीत मकरंद में रागों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय छः प्रमुख राग तथा उनकी भार्याओं के वर्णन के अतिरिक्त पुरुष राग, स्त्री राग और नपुंसक राग जैसे भेदों का भी विस्तृत विवेचन किया हैं यह वर्गीकरण नव रसों पर आधारित है। इन भेदों में भी मुक्तांग, कंपिता, अर्धकंपिता और कंपविहीना इस प्रकार का वर्गीकरण किया गया है जोकि 'संगीत रत्नाकर' में नहीं मिलता।

नारद के 'संगीत मकरंद' में राग वर्गीकरण का विशद् वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ में राग वर्गीकरण के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

1. सूर्यांश राग, (प्रातः कालीन राग), मध्याह्नकालीन राग तथा चंद्रांश राग।
2. संपूर्ण षाडवादि व्यवस्था के अनुसार संपूर्ण राग, षाड्व राग, औडव राग।
3. लिङ्ग के अनुसार—पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिंग, तथा नपुंसक राग।
4. रागांग राग इस श्रेणी में नारद ने कुछ राग पृथक रूप से रखे हैं।
5. इस वर्ग के अन्तर्गत 6 पुरुष राग और प्रत्येक की 6 भार्याएँ मानी गई हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में रागों के समय सिद्धान्त व रागों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। रागों के पुरुष, स्त्री, नंपुसक आदि राग वर्गो में रखने की परम्परा का निर्वाह मध्यकालीन ग्रंथों में होता रहा। प्रश्न उठता है कि यदि इस ग्रंथ को शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' से पूर्व की रचना माना जाए, जैसा कि कुछ मनीषियों का मत है, तो समस्या यह खड़ी होती है, कि 'संगीत रत्नाकर' ने अपनी कृति में रागों के स्त्री पुरुष वर्गीकरण का कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया है। 'संगीत मकरंद' के परवर्ती अन्य ग्रंथों में भी कई शताब्दियों तक इस विषय पर कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। सत्रहवीं शताब्दी के कुछ ग्रंथों यथा 'संगीत पारिजात' में रागों के समय सिद्धान्त का कुछ विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में अनुसंधाता के समक्ष पुनः यह कठिनाई आती है कि, ऐतिहासिक ग्रंथों के कालानुक्रम की निरंतरता को कैसे बनाए रखा जाए।

3. जीवन-वृत्त विषयक समस्याएँ

इतिहास के महान संगीतज्ञों एवं वाग्गेयकारों पर शोध करते समय भी

उनकी जन्म स्थान, तिथि एवं स्थिति काल आदि निर्धारित करने में कई कठिनाइयाँ आती हैं।

'गीत गोविन्द' के रचियता जयदेव के जन्म स्थान को लेकर आज तक विवाद है। जैसे सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान् स्व. डॉ. सुमिति कुमार चटर्जी के अनुसंधान के अनुसार जयदेव बंगाली थे। उनके शब्दों में—

Jayadeva belonged to Bengal and was a member of the court of king Lakshmana Sena who ruled at Navadvip on the Bhagirathi river in west Bengal upto the year 1203 A.D. [12]

उन्होंने उड़ीसा और बिहार का जो दावा है उनको इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

The Kendu-bilva of Jayadeva has been identified with a big village, now known also as Kenduli, under the Balipatna Police Station of Puri district. Iconographical evidence from sculpture is also presented to prove Jayadeva's mythological conception regarding Vishnu as being essentially of Orissa origin. There has been a tremendous influence of the Gita-Govinda on Orissan literture, of course, and this has been looked upon as being due to Jayadeva having been a poet from Orissa... Some Maithils also claim Jayadeva to be an inhabitant of Tirahuta or Tira-Bhukti, i.e., Mithila.[13]

हाल में समाचार पत्रों द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर हम इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि आज तक प्रत्येक प्रान्त 'जयदेव' को अपना कहने का दावा कर रहा है।

उदाहरणार्थ : एक लेख में उड़िसी नृत्य के महान् कलाकार गुरु केलू चरण महापात्र के संबंध में लिखते हुए लेखक ने जयदेव को उड़िया बताया।

उनका विरोध करते हुए एक बंगाली सज्जन ने समाचार पत्र (Hindustan Times, 2 Nov., 1991) में अपने प्रमाण प्रस्तुत करते हुए जयदेव को बंगाली बताया है। उसके तुरन्त बाद एक उड़िया सज्जन ने उसका खंडन किया है, और बताया है—

"It has been proved conclusively after sustained research and prolonged debate that Jayadeva, the famous Sanskrit poet,was born in Orissa. The village Kendubilwa is in Orissa and not in Bengal."[14]

ठीक उसके कुछ महीने पश्चात् फिर एक सज्जन ने उसका खंडन किया व पुनः उनको बंगाल का बताया, यह इस प्रकार है—

"The dispute over the birth place of Jayadeva, the 12th century Sanskrit poet, has again come to the fore. The old controversy was whipped up afresh by a Doordarshan Programme on Feb. 2 claiming Jayadeva was born in Kenduli village in Birbhum District of West Bengal."[15]

इस प्रकार जयदेव एक ऐसा व्यक्तित्व है जिनसे संबंधित शोध आज तक पूरी तरह प्रमाणित सिद्ध नहीं हो सका, क्योंकि उड़िया, बंगाली यहाँ तक कि बिहारी विद्वान् सभी उन्हें अपने क्षेत्र से सम्बन्धित मानते हैं। जबकि तथ्य यह है कि उनका जन्म निश्चित रूप से एक स्थान पर ही हुआ होगा बाद में भ्रमणवृत्ति होने के कारण स्थान-स्थान पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप उन्होंने छोड़ी होगी जिसके आधार पर प्रत्येक प्रान्त उन्हें अपना मानना चाहता है। स्वयं जयदेव ने अपने जन्मस्थान के विषय में लिखा है—

वर्णित जयदेवकेन हरेरिदं प्रावणेन
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन। [16]

विद्वानों में इसी विषय को लेकर आपसी मतभेद हैं। जो विद्वत्जन जयदेव को उड़ीसा का मानते हैं उनके पास ठोस तथ्य हैं उनको उड़ीसा का बताने के लिये[17] और कुछ विद्वत्जन जयदेव को पूरी तरह से पश्चिम बंगाल का मानते हैं, पूर्ण प्रमाण के साथ। इस पंकार जयदेव के जन्मस्थान पर एक मत होकर आज भी कुछ कहना असंभव है।

तानसेन जैसे विख्यात गायक के जन्म एवं वंशपरम्परा से जुड़ी कई किंवदन्तियाँ हैं जिनका कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। सर्वप्रथम तानसेन की जन्मतिथि के विषय में संगीत शास्त्रियों में मतभेद हैं। यह कहा जाता है कि तानसेन के पिता मकरंद पांडे थे जो जाति में गौड़ ब्राह्मण थे। इस कथा का भी कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, तथा यह विषय भी आलोचकों में किए विवादास्पद ही है। तानसेन की मृत्यु का विवरण अबुल फज़ल कृत 'आईने-अकबरी' (1589) में अवश्य मिलता है जिसके आधार पर उनकी मृत्यु तिथि का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार गोपाल नामक जैसे महान वाग्गेयकार के जीवन एवं संगीत कृतित्व के बारे में अत्यंत संक्षिप्त विवरण ग्रंथों में मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' की कल्लिनाथ कृत टीका में उनका उल्लेख आवश्य हुआ है कि गोपाल नायक 'राग कदम्बक' नामक प्रबंध के एक प्रकार को बत्तीस राग तथा तालों में गाने में निपुण थे।

गोपालनायकेन गीतद्वात्रिंशद्रागतालयुक्तगधात्मके

भ्रमराख्ये स्वस्तिकभेदे रागकदम्बे प्रथमसिंहनन्दन-

तालबद्धे मालवश्रीपदे पदतालावेवोद्ग्राहध्रुवयोर्योजितावितिद्वयङ्गतवम्।'[18]

तालाध्याय में भी कल्लिनाथ ने गोपाल का कुडुक्कताल के सन्दर्भ में गोपाल नायक को पुनः उल्लेख किया है—

कुडुक्कतालस्तु गोपालनायकेन
रागकदंबैरेवगुप्तवदप्रयुक्तः।'[19]

कल्लिनाथ टीका के उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि गोपाल नायक प्रबंध गान में निपुण थे तथा कल्लिनाथ (15वीं शताब्दी) के समय तक भी इनकी इतनी ख्याति थी कि कल्लिनाथ ने इन्हें प्रबंध शैली के कुशल गायक के रूप में उल्लिखित किया है। सत्रहवीं शताब्दी के फारसी ग्रंथ फकीरुल्लाह कृत 'रागदर्पण' में अमीर खुसरो के साथ गोपाल नायक का प्रतिस्पर्धा का उल्लेख है।

'स्वर्गवासी अमीर खुसरो की विद्या की ख्याति दुनिया के इस छोर से उस छोर तक फैली हुई थी। नायक गोपाल उनका नाम सुनकर डंडा बांधकर आया।... यदि इन्हें कोई बांधता है तो उसे मुकाबला करना पड़ता है और गायकों की लड़ाई वास्तव में गाने की होड़ है। ...अमीर खुसरो ने सुल्तान अलाऊद्दीन से कहा कि वर्तमान काल में गोपाल अद्वितीय गायक है उसके 1200 शिष्य हैं जो सिंहासन को कहारों के स्थान पर उठाते हैं और उसमें अपनी भलाई समझते हैं। आप मुझे तख्त के नीचे छिपा दें और गोपाल नायक को बुला लें और उससे कह दें कि खुसरो बीमार हैं; जब तक उसे आराम न हो तब तक तुम्हारा गाना हुआ करे। गोपाल आया और गाना गया। अमीर खुसरो गोपाल के आने से पहले गए और तख्त के नीचे छिप गए। छह दिन तक यही कार्यक्रम चलता रहा। अमीर खुसरो जो अब तक चुप थे, दरबार में आए। गोपाल नायक ने उनसे आने के लिये कहा। अमीर खुसरो ने कहा कि मैं ईरान से अभी हिन्दुस्तान आया हूँ और हिन्दुस्तान की गान विद्या का मनोरंजन करने आया हूँ। मैं आप जैसा आचार्य नहीं हूँ कि सिर पर कल्मा बांधूँ। पहले आप गाएँ। उसके पीछे मुझे जो कुछ आता है मैं सुना दूंगा । गोपाल ने गाना प्रारम्भ किया। जो गीत और जो स्वर तथा जो अलाप गोपाल ने सुनाई, अमीर खुसरो ने कहा कि बहुत पहले से मैं इन्हें जानता हूँ। गोपाल ने कहा, 'अच्छा सुनाइए।' अमीर खुसरो ने हर हिन्दुस्तानी राग के मुकाबले में फारसी राग सुनाए। गोपाल दंग रह गया। इसके बाद खुसरो ने कहा कि यह तो मैंने लोक विख्यात फारसी के गाने सुनाए हैं। अब वे गाने सुनिए जिनकी मैंने स्वयं रचना की हैं। गोपाल और सारी सभा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। मैदान अमीर खुसरो के हाथ रहा।'[20]

क्या गोपाल नायक के सम्बन्ध में उक्त सूचना विश्वसनीय है . इस कथन की पुष्टि के पुन: कुछ कारण हैं। प्रथम तो फकीरुल्लाह और गोपाल नायक के काल में लगभग 400 वर्षो का अंतर है। अमीर खुसरो के ग्रन्थों में उनकी (खुसरो) सांगीतिक उपलब्धियों का वर्णन मिलता है इस सन्दर्भ में निम्न उदाहरण प्रस्तुत है—राग शहाना उनकी निर्मित है जिसका उल्लेख के विषय में शहाब सर्मदी खुसरो के मूल फारसी ग्रन्थ का अनुवाद इस प्रकार देते हैं—

"We added or allotted to it tune for being played on the occfasion of royal ceremonies."

आगे प्रो. सर्मदी कहते है—

"The phrase occurs in the context of the five time 'band-play', a mark of sovereignty. Shahana should have been thus a recognized addition to the scheduled 'tune' for naubat-playing."[21]

इस प्रकार शाही वाद्यवृंद में अमीर खुसरो ने शहाना को सम्मिलित किया था जो कि उनकी अपनी कृति थी।

परन्तु गोपाल नायक सम्बन्धित यह घटना अथवा अन्य कोई तथ्य प्राप्त नहीं होता । गोपाल नायक और अमीर खुसरो की संगीत प्रतिस्पर्धा का होना और अमीर खुसरो द्वारा गोपाल का पराजित करना आदि घटनाएँ भी काल्पनिक प्रतीत होती हैं। फारसी ग्रंथ 'गुनियत-अल-मुनियत' (1275) में ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। यह पुस्तक अमीर खुसरो की मृत्यु के लगभग 50 वर्ष बाद लिखी गई है।

प्रबंध जैसी जटिल गान विद्या का अमीर खुसरो द्वारा अनुकरण करके तुरन्त प्रस्तुत करना और गोपाल नायक जैसे इस गान शैली के सिद्ध हस्त वाग्गेयकार को पराजित करना आदि सूचनाएँ काल्पनिक और असत्य ही प्रतीत होती हैं। किन्तु खेद की बात है कि ऐसी भ्रामक धारणाएँ आज भी संगीत जगत् में बनी हुई हैं ओर जो शोध हो रहे हैं उनमें भी इन्हीं घटनाओं की पुनरावृत्ति की जा रही है। सही और प्रामाणिक सूचनाओं का अभाव प्राय: दृष्टिगोचर होता है।

4. पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या से सम्बन्धित समस्याएँ

संगीत के पारिभाषित तत्त्वों की व्याख्या से सम्बन्धित विषयों में भी विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है। उदाहरणार्थ श्रुति समान है अथवा असमान, सर्वप्रथम इस विषय को लेकर ही विद्वानों में विवाद है कुछ विद्वान् श्रुतियों को समान तो कुछ असमान मानने को पक्ष में हैं इस सन्दर्भ में श्री वी.न. भातखंडे जी का यह कथन द्रष्टव्य है—

"There is a great difference of opinion among our modern schoars themselves as to the question whether or not the Shruti was a fixed unit. Some scholars say it was, others deny that. Needless to say, the definition of Shuddha scale hinges on the solution of this question. We all know that the Rages of Ratnakara are defined in terms of the Murchhanas and Jatis, and these would remain indefinite so long as the Shuddha scale remains unsatisfactory and indefinite. So, that until there is a consensus of opinion as to the right value of a Shruti until it becomes possible to determine the Shuddha scale of Natya Shastra and Ratnakara, the two works are bound to remain sealed books."[22]

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक श्रुति से सम्बन्धित इस प्रश्न का समाधान नहीं हो जाता तब तक प्राचीन शास्त्रों में वर्णित शुद्ध स्वर सप्तक के क्रियात्मक रूप का अनुमान लगाया संभव नहीं हो पाएगा। इसी प्रकार संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथों में उल्लिखित रागों आदि के स्वरूप का भी स्पष्टीकरण कर पाना कठिन है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसा कर पाना संभव है।

5. पुरातात्विक स्त्रोतों के अध्ययन सम्बन्धी समस्याएँ

संगीत में शोध करते समय विभिन्न पुरातात्विक स्त्रोतों से भी लाभप्रद एवं महत्त्वपूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध होती है। प्राचीन चित्रों, शिल्पकलाओं, वास्तु एवं स्थापत्य कलाओं, शिलालेखों, मुद्राओं, साहित्यिक परंपराओं, पुरानी बंदिशों आदि में संगीत सम्बन्धी अनेक ऐसे विवरण प्राप्त हो जाते हैं जो शोधार्थी के दिशा निर्देशन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ कला की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है, ऐसी असंख्य कलाकृतियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें गीत, वाद्य एवं नृत्य सम्बन्धी अनेक मुद्राएँ मिलती हैं तथा जिनके आधार पर उस काल की गान एवं नृत्य परम्पराओं के बारे में शोधार्थी को लाभकारी तथा रोचक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

शिल्प कलाओं में संगीत एवं नृत्यादि कलाओं का अंकन प्राचीन काल से ही होता आया है, सांची, भरहुत, अमरावती आदि स्थानों पर प्राप्त शिल्पों में कई ऐसी अनुकृतियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर उस काल के प्रचलित वाद्यों के विषय में रोचक सामग्री प्राप्त होती है। इन आकृतियों के आधार पर उस काल के प्रचलित वाद्यों के आकार, प्रकार, बनावट, निर्माण सामग्री आदि के विषय में भी अनुमान लगाया जा सकता हे। वाद्यों की वादन क्रिया आदि के विषय में भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। स्त्री कलाकरों के द्वारा मृदंग एवं वंशी वादन का अंकन भी कई कलाकृतियों में हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिल्पकलाओं में विभिन्न वाद्यों का अंकन प्रचुर मात्रा में हुआ है लेकिन उन पर अनेक दृष्टियों से विचार करना आवश्यक है। प्रश्न यह उठता है कि इन वाद्य-सम्बन्धी अंकन को किस सीमा तक प्रामाणिक माना जाए।

अगर हम शिल्पों को ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि वीणा दण्ड वंशी वादक के शरीर से चिपका हुआ है और यदि वंशी को दाहिनी ओर में किया जाए तो दंड छिप जाएगा व कला की दृष्टि से असुंदर प्रतीत होगा।

ऐसे शिल्प बहुत मिलते हैं जिनमें कुछ लोग कान पर हाथ लगाते हुए दिखाई देते हैं। उसका अर्थ सभी अपने-अपने हिसाब से लगा सकते हैं। हो सकता है वह गा रहे हों और यह भी हो सकता है कि वो गाना बहुत ध्यान से सुन रहे हों। मुकुन्द लाठ ने अपने लेख 'संगीत के इतिहास के निर्माण में शिल्प की भूमिका में' में इस प्रकार कहा है कि 'अक्सर पहली समस्या यही आती है कि अगर पाँच लोग बेठे गा बजा रहे हों, तो उनमें गा कौन रहा है।[23]

कलाकार का मुख्य उद्देश्य अपनी कृति को सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत करना है न कि उसमें प्रस्तुत की गई सामग्री का सही चित्रांकन करना। अत: स्पष्ट है कि शिल्पादि कलाओं में अंकित वाद्यों में उनकी बनावट (जैसे कितनी तन्त्रियाँ हैं) आकार-प्रकार, वादन क्रिया व किस धातु के बने हुए हैं, आदि के सम्बन्ध में सूक्ष्य तत्त्यों के ज्ञान नहीं हो पाता है। उनकी स्थूल जानकारी ही उपलब्ध होती है सूक्ष्म विवरणों का ज्ञान शोधार्थी को प्राप्त नहीं होता है।

6. वैज्ञानिक पक्ष प्रायोगिक आदि की समस्याएँ

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में सैद्धान्तिक रूप से शुद्ध एवं विकृत सात शुद्ध तथा पाँच विकृत (रे ग ध नी म) कुल मिलाकर 12 स्वरों को मान्यता दी गई है। स्वरों के स्थान एवं पारस्परिक अंतराल को विभिन्न गुणांतरों एवं आंदोलन संख्या के आधार पर वैज्ञानिक रीति से मापने की पद्धति पश्चिम संगीत की देन है। राग प्रणाली भारतीय संगीत का आधार है। किसी भी राग की निर्मिति में अनेक तत्त्व सहायक होते है। प्रत्येक राग में स्वरों के विशिष्ट रूप (शुद्ध, कोमल तीव्र आदि) विशिष्ट क्रम (आरोह, अवरोहादि) विशिष्ट स्वर संदर्भो के प्रयोग आदि की व्यवस्था होती है। राग की चलन, विविध स्वर संदर्भो के प्रयोग आदि के आधार पर विभिन्न विकृत स्वरों के स्थानों में भी किंचित् परिवर्तन हो जाता है। यही कारण है कि किन्हीं दो रागों में यदि किसी स्वर का कोमल रूप प्रयुक्त होता है तो वह सैद्धान्तिक रूप में कोमल अवश्य कहलाता है किन्तु क्रियात्मक रूप से यदि देखा जाय तो स्वर के लगाव में अंतर होने के कारण उसी स्वर की ध्वनि दोनों रागों में भिन्न सुनाई देगी। उदाहरणार्थ भैरवी, तोड़ी, भीमपलासी आदि रागों के कोमल गंधार में परस्पर ध्वनि भेद है। अत: भारतीय रागों के स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए कुछ वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले लेखकों ने इस स्वरों पर वैज्ञानिक ढंग से पुनर्विचार किया है। इस सन्दर्भ में Introduction to Study of Indian Music[24]—का नामोल्लेख करना चाहेंगे। इस पुस्तक में एक तालिका के अन्तर्गत विभिन्न रागों में लगने वाले विकृत स्वर स्थानों, उनके नाम एवं आंदोलन संख्या आदि का विवरण दिया है।

उनके अनुसार काफी और ताड़ी रागों के कोमल गंधार को कोमल संज्ञा, भैरवी के कोमल गन्धार को साधारण गंधार आदि संज्ञाएँ दी गई हैं और आंदोलन संख्या आदि का भी निर्देश किया गया है। इस पुस्तक में विभिन्न रागों में प्रयुक्त मध्यम की विभिन्न संज्ञाओं आंदोलन संख्याओं का भी निर्देश किया गया है यथा काफी, भैरवी, विहाग रागों में लगने वाले मध्यम को कोमन मध्यम संज्ञा दी गई है, धानी में प्रयुक्त मध्यम को कैशिक मध्यम कहा गया है मारवा के मध्यम को 'तरतीव्र' संज्ञा दी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्वरों के स्थान एवं पारस्पारिक अंतराल के मापन की दिशा में काफी प्रयास हो रहे हैं। किन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि इनप प्रयोगों का सैद्धान्तिक महत्त्व हो सकता है किन्तु व्यवहार में इन प्रयोगों से कुछ निष्कर्ष नहीं निकलता है।

प्रश्न उठता है कि क्या विभिन्न रागों के स्वर स्थानों को स्थापित (fix) किया जा सकता है . क्या दरबारी का गन्धार, जो आन्दोलन के साथ प्रयोग होता है, उसकी आंदोलन संख्या को निचित रूप से बताया जा सकता है . हर राग में लगने वाली स्वर संगतियों, चलन आदि के आधार पर राग के स्वरों की आंदोलन संख्या में भिन्नता आनी स्वाभाविक है।

इन समस्याओं को संगीत शिक्षण संस्थाओं में सम्बोधित करना होगा जिससे संगीत में एकरूपता स्थापित हो सके।

पाद-टिप्पणियाँ

1. संगीत रत्नाकर, भाग-2, पृ. 212
2. संगीत समय सार, पृ. 97
3. ख्याल शैली का विकास, पृ. 83
4. संगीत (जनवरी-फरवरी, 1988), पृ. 5
5. A Short Historical Survey of the Music of Upper India, p. 5
6. A Short Historical Survey of the Music of Upper India, p. 6
7. संगीत मकरंद, पृ. 14
8. संगीत मकरंद, पृ. 14
9. संगीत मकरंद, पृ. 15
10. वही
11. संगीत मकरंद, पृ. 26
12. Jayadeva, p. 7
13. Jayadeva, pp. 7-8
14. Hindustan Times, Jayadev's birth place, 30.11.91
15. Hindustan Times, Jayadeva birth place constroversy, 27.2.92
16. उद्धृत : The Sacred Sympony, p. 58
17. डॉ. सुमति मुटाटकर से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त सूचना के आधार पर
18. संगीत रत्नाकर टीका, भाग-2, पृ. 305
19. उद्धृत : A Short Historical Survey of Music of Upper India, p. 11
20. मानसिंह और मानकुतूहल, पृ. 94-95
21. Commemoration Volume (Life, Times and Works of Ameer Khusrai)—article Khusrau and Indian Music, p. 262
22. A comparative Study of Some of the Leading music systems of the 15th, 16th, 17th and 18th Centuries, p. 8-9
23. भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्याएँ, पृ. 119
24. Introduction to study of Indian music, p. 8

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

शास्त्री, एस. सुब्रह्मनियम, संपादक : संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव भाग-2, अड्यार, 1951

आचार्य बृहस्पति, संगीत समयसार, संपादक: पार्श्वदेव, श्री कुंद कुंद भारती, दिल्ली, 1977

सक्सेना, मधुबाला, ख्याल शैली का विकास, विशाल पब्लिकेशन, कुरुक्षेत्र, 1985

संगीत, जनवरी-फरवरी अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस

Bhatkhande, V.N., A Short Historical Survey of the Music of Upper India, Malabar Hill, Bombay, 1934

Ibid

तैलंग, मंगेश रामकृष्ण, संपादक : संगीत मकरन्द-नारद, गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरिज़, बड़ौदा, 1920

Ibid

Ibid

Ibid

जयदेव, सुमति कुमार चैटर्जी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली-1973

वही

मानसिंह और मान कुतूहल, हरिहर निवास द्विवेदी, विद्या मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

Jayadev's birth place, Dr. Sumiti Chattrjee, Hindustan Times, 30.11.91

Jayadev's birth place constroversy, Hindustan Times, 27.2-1992

The Sacred Sympony, Krishna Bisht, Bhagirath, Sera Sansthan, Gaziabad, 1986

डॉ. सुमति मुटाटकर से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त सूचना के आधार पर संगीत रत्नाकर

Bhatkhande V.N. , A Short Historical Survey of Music of Upper India, Sangeet Karyalaya, Hathras

Commemoration Volume, Ansari National Amir Khushru Society, New Delhi